बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 31

स्टार्टअप के लिए राहत

भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) का डिफरेंशियल वोटिंग राइट्स (डीवीआर) वाले शेयर जारी करने के बारे में मशविरा पत्र लाना गैर सूचीबद्ध कंपनियों के प्रवर्तकों के लिए खुशी की एक वजह तो है। उच्च मताधिकार के साथ जारी किए जाने वाले शेयरों पर सन 2009 में ही प्रतिबंध लगा दिया गया था। नया कदम दर्शाता है कि सेबी का ध्यान उस समस्या पर है जिसका सामना कई गैर सूचीबद्ध स्टार्टअप के प्रवर्तकों को करना पड़ रहा है। यानी बिना अपनी फर्म पर नियंत्रण गंवाए वृद्धि को गति देने के लिए निरंतर फंड की जरूरत। सेबी ने ऐसी कंपनियों को सूचीबद्ध करने का प्रस्ताव भी रखा है, बशर्ते कि मसौदा विवरणिका फाइल करने के पहले एक वर्ष से अधिक समय तक प्रवर्तक सुपीरियर वोटिंग राइट अपने पास रखे। गत वर्ष हॉन्गकॉन्ग और सिंगापुर स्टॉक एक्सचेंजों ने दोहरी श्रेणी के शेयरों वाली कंपनियों को सूचीबद्ध करने की अनुमति दी थी।

सूचीबद्धता की प्रक्रिया में सहायता के लिए सेबी ने प्रस्ताव रखा है कि डीवीआर जारी करने के पहले लगातार तीन वर्ष तक मुनाफे की जरूरत जैसे प्रावधान शिथिल किए जाएंगे। प्रवर्तकों को सूचीबद्धता के बाद 'सुपीरियर' शेयर रखने और अधिग्रहण संहिता में बदलाव की अनुमति दी जाएगी। हालांकि ये शेयर सूचीबद्धता के बाद नहीं जारी किए जा सकते, न ही इनका कारोबार किया जा सकता है। गूगल की प्रवर्तक अल्फाबेट, फेसबुक और अलीबाबा जैसी वैश्विक कंपनियों के प्रवर्तकों ने अपनी कंपनियों पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए यह तरीका अपनाया है। मशविरा पत्र में सेबी ने प्रति शेयर वोट के मामले में इन कंपनियों का अनुसरण किया है। सुपीरियर वोटिंग राइट के मामले में एक शेयर पर अधिकतम 10 वोट हो सकते हैं। आंशिक मताधिकार के मामले में 10 शेयरों पर एक वोट हो सकता है।

फेसबुक इसे समझने के लिए अच्छा उदाहरण है। एक ओर उसकी काफी आलोचना हुई क्योंकि जकरबर्ग और अन्य प्रवर्तकों के पास 70 फीसदी मताधिकार हैं। उसी समय जकरबर्ग ने 2012 में इंस्टाग्राम को 100 करोड़ डॉलर में खरीदने के लिए अपने उच्च वोटिंग अधिकार का इस्तेमाल किया और उच्च लाभांश का भुगतान किया। 2018 में इंस्टाग्राम का मूल्यांकन बढ़कर 10,000 करोड़ डॉलर हो गया। इस तरह कंपनी के संस्थापक की दूरदर्शिता से सभी अंशधारकों का मूल्यवर्धन हुआ। सेबी ने यह कदम ऐसे वक्त उठाया है जब एक शेयर, एक वोट बनाम सुपीरियर शेयर की बहस दुनिया भर में चल रही है। प्रमुख फंड प्रबंधक और कंपनी प्रशासन के विशेषज्ञों ने यह चेतावनी जारी की है कि दोहरी श्रेणी के शेयरों से सार्वजनिक निगरानी में कमी आएगी और अंशधारकों के प्रति प्रबंधन की जवाबदेही भी घटेगी। ऐसे ढांचे निदेशक मंडल के कर्तव्य निर्वहन की क्षमता को भी प्रभावित करते हैं। आलोचक कहते हैं कि मताधिकार को इस प्रकार आर्थिक स्वामित्व से अलग करना अंशधारकों के लिए नुकसानदेह है। खासतौर पर लंबी अवधि में इसका नुकसान हो सकता है। ऐसे ढांचे के खिलाफ अन्य दलीलों में पारिवारिक स्वामित्व वाली कंपनियों द्वारा किया जाने वाला दुरुपयोग शामिल है। कुछ गलत होने पर अंशधारक ज्यादा कुछ कर नहीं सकते और मताधिकार हस्तांतरणीय होता है। इस संबंध में सेबी ने रूढ़िवादी रुख अपनाकर समझदारी दिखाई है। उसने सूचीबद्धता के पांच वर्ष बाद सनसेट क्लॉज लागू करने का प्रस्ताव रखा है। अगर बहुलांश अंशधारक सहमत हों तो इसे पांच साल के लिए बढ़ाया जा सकता है। कई अन्य प्रतिबंध भी हैं। आईपीओ के बाद स्वतंत्र निदेशक या अंकेक्षक की नियुक्ति या निष्कासन के वक्त, कंपनी के स्वामित्व में बदलाव के वक्त, स्वैच्छिक रूप से उसे बंद करते वक्त सुपीरियर शेयर को सामान्य माना जाएगा। इससे पर्याप्त जांच-परख सुनिश्चित होगी और व्यवस्था का दुरुपयोग कम से कम होगा।

अजय मोहंती

स्वयंसेवी संगठन की तरह चुनाव मैदान में कांग्रेस

कांग्रेस के पास सवाल हैं लेकिन जवाब नहीं, नेता हैं लेकिन विजेता नहीं। पार्टी एक सदाचारी, सत्ता विरोधी स्वयंसेवी संगठन की तरह पेश आ रही है।

पहले चरण के मतदान में दो सप्ताह से भी कम वक्त बचा है। ऐसे में प्रश्न यह है कि कांग्रेस इस चुनौती के लिए कितनी तैयार है? कांग्रेस के बड़े नेताओं और कार्यकर्ताओं का उत्साह कैसा है? ये बड़े नेता या नेतृत्वकर्ता कौन हैं? कांग्रेस काफी समय से कह रही है कि मोदी सरकार इतिहास की सबसे भ्रष्ट, अक्षम, विभाजनकारी और विनाशकारी सरकार है। परंतु कांग्रेस हमें यह नहीं बता रही है कि उसके पास इससे निपटने की क्या योजना है। मतदाताओं के लिए महत्त्वपूर्ण मुद्दों मसलन रोजगार और अर्थव्यवस्था, राष्ट्रवाद और सामाजिक समरसता आदि को लेकर उसका क्या रुख है? यहां मैं एक और प्रश्न करना चाहता हूं। आपको क्या लगता है कि आज कांग्रेस कैसी है? क्या वह ऐसा राजनीतिक दल है जो अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है? या फिर वह एक स्वयंसेवी संगठन (एनजीओ) की भांति है जिसका मानना है कि वह अपने काम से दुनिया बदल देगा?

इससे कांग्रेस समर्थक नाराज हो सकते हैं लेकिन यह बात आवश्यक है। बीते पांच वर्ष में अधिकांश वक्त आपके प्रतिद्वंद्वी ने आपको ठिकाने से लगाए रखा और अब वह अंतिम प्रहार की तैयारी में है। यदि पुन: कांग्रेस का प्रदर्शन कमजोर रहा तो पार्टी के कई हताश और व्यग्र सदस्य बाहर की राह लेंगे। इस बात की भी काफी आशंका है कि हार के बाद कर्नाटक और मध्य प्रदेश में कांग्रेस की सरकार गिर जाए। राजस्थान में भी अगर सरकार बच गई तो यह खुशकिस्मती होगी। तब कांग्रेस के पास बचेगा क्या? संभव है कि तब भी यह उन्हीं पुराने या शायद नए स्वयंभू चाणक्यों और मैकियावेलियों और स्वयंभू बौद्धिकों की पार्टी बनी रहेगी जिनमें एक साझा बात यह होगी कि वे कोई चुनाव न लड़े हैं और न ही जीते हैं। जहां उनको प्रभार सौंपा गया वहां भी बाजी हाथ से निकल गई। राजनीतिक दलों का एक ही लक्ष्य होता है-चुनावी जीत। इसके लिए कड़ी मेहनत और प्रतिबद्धता की आवश्यकता होती है। सफलता के साथ इनाम आता है और विफलता की कीमत चुकानी पड़ती है। संक्षेप में कहें तो इसका संबंध जवाबदेही से है। आप बताइए कि क्या कांग्रेस में भी हाल के दिनों में ऐसा ही कुछ होता रहा है? अगर इसका उत्तर ना है तो मैं आपको बताता हूं कि क्यों पार्टी एक स्वयंसेवी संगठन जैसी दिखती है। स्वयंसेवी संगठन भी कड़ी मेहनत करते हैं लेकिन उनके लक्ष्य और उनका ध्यान बदलता रहता है। उनकी प्रतिस्पर्धा सरकार से होती है। वे तुलनात्मक रूप से हमेशा सक्षम नजर आते हैं। वहां जवाबदेही दानदाता या लोगों की आत्मचेतना की होती है। वहां भी सत्ता विरोधी भावना होती है।

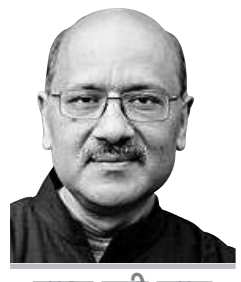

राष्ट्र की बात
शेखर गुप्ता

बीते वर्षों के दौरान कांग्रेस सामंती होती गई और काबिलियत का मान घटता गया। नई प्रतिभाएं बहुत कम सामने आईं। गांधी परिवार समेत पार्टी के पुराने नेता अपनी पकड़ बचाए रखने में लगे रहे। वे पार्टी का अपने क्षेत्रों में विस्तार तक नहीं कर सकते, वे नए लोगों के लिए जगह भी नहीं खाली करते। युवा प्रवक्ता काफी अच्छे हैं लेकिन वे चुनाव नहीं लड़ते। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा और संपत्ति की चिंता रहती है। देश भर में कांग्रेस के शीर्ष 50 लोगों की सूची बनाएं तो आपको इस विरोधाभास का अंदाजा लग जाएगा।

इसके विपरीत दरबार में या जवाबदेही मुक्त स्वयंसेवी संगठन अथवा पारिवारिक कारोबारों में चापलूस प्राय: बचे रहते हैं। आपको शायद मोहन प्रकाश का नाम भी याद न हो। यह पुराने समाजवादी राहुल गांधी की पसंद थे। उन्हें एक के बाद एक महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश समेत कई प्रमुख राज्य सौंपे गए। वह राहुल गांधी को कांग्रेस का जयप्रकाश नारायण बताकर प्रसिद्ध हुए और राहुल के करीबी बने। उनकी नाकामियों में निरंतरता साफ नजर आती थी। कांग्रेस के लोगों से उनके बारे में पूछिए तो वे आपको आमिर खान की फिल्म 3ईडियट्स का गाना सुना देंगे- कहां से आया था वो, कहां गया उसे ढूंढो...।

वह इकलौते नहीं हैं। सीपी जोशी भी लंबे समय तक राहुल गांधी के करीबी पसंदीदा रहे। उन्होंने भी जिस चीज को हाथ लगाया उसे नष्ट कर दिया। इसका ताजा उदाहरण है पूर्वोत्तर। क्या उन्हें जवाबदेह ठहराया गया, कतई नहीं। बशर्ते कि आप यह न सोचते हों कि राजस्थान विधानसभा का अध्यक्ष बनाया जाना कोई दंड है। मेरे सहकर्मी और दी प्रिंट के राजनीतिक संपादक डी के सिंह ने मुझे राहुल गांधी की 'ए' टीम का ब्योरा दिया। वह नाकाम लोगों की फेहरिस्त है। अशोक तंवर जो एक समय राहुल के युवा दलित सितारा थे, वह अपना लोकसभा चुनाव हारने और विधानसभा चुनाव में पार्टी के सफाये के बाद भी हरियाणा कांग्रेस के प्रमुख बने हुए हैं।

हरियाणा में एक और वंशवादी चेहरा हैं पार्टी के मीडिया प्रमुख रणदीप सिंह सुरजेवाला। वह हालिया जींद लोकसभा उपचुनाव में बमुश्किल तीसरे स्थान पर रहे। महासचिवों में अंबिका सोनी और मुकुल वासनिक चुकी हुई ताकत होने के बावजूद क्रमश: जम्मू कश्मीर तथा केरल और तमिलनाडु के प्रभारी बने हुए हैं। दीपक बाबरिया मध्य प्रदेश के प्रभारी बने हुए हैं जबकि उन्होंने कभी कोई चुनाव नहीं लड़ा। विदेश प्रभाग के प्रमुख आनंद शर्मा और पार्टी के शक्तिशाली कोर ग्रुप के समन्वयक जयराम रमेश पर भी यह बात लागू होती है। कोर समूह में ए के एंटनी 2001 के बाद से चुनाव नहीं लड़े हैं। केसी वेणुगोपाल निवर्तमान सांसद हैं लेकिन पार्टी के कामकाज के कारण वह इस बार शायद ही चुनाव लड़ें। क्या आप सोच सकते हैं कि अमित शाह इस बार पार्टी पर ध्यान नहीं दे पाएंगे क्योंकि वह गांधीनगर से लोकसभा चुनाव लड़ रहे हैं।

राहुल के इर्दगिर्द मौजूद सलाहकार स्मार्ट और पढ़े लिखे लोग हैं। उनके विश्वसनीय सहयोगी कनिष्क सिंह, बेहतरीन ट्वीट लेखक निखिल अल्वा, पूर्व अफसरशाह के राजू, डेटा वैज्ञानिक प्रवीण चक्रवर्ती, प्रमुख वैचारिक प्रशिक्षक सचिन राव, पूर्व बैंकर अलंकार सवाई और सोशल मीडिया प्रमुख दिव्या स्पंदना। क्या आपको इनके बीच कुछ समानता दिखती है? स्पंदना को छोड़कर कोई भी राजनेता नहीं है। इनमें सबसे अधिक नजर आने वाले हैं संदीप सिंह। वह जेएनयू में आइसा के नेता रहे हैं और राहुल के भाषण लिखते हैं। महासचिवों, कोर ग्रुप और राहुल के प्रमुख सलाहकारों पर नजर डालें तो केवल चंद लोगों के पास राजनीतिक दिमाग है। इनमें सबसे तीक्ष्ण हैं अहमद पटेल लेकिन अब वह केंद्रीय भूमिका में नहीं हैं। याद रहे वह ऐसे पुराने कांग्रेसी हैं जिसने अमित शाह से उनके गृह राज्य में लड़ाई लड़ी और चुनाव आयोग से लड़भिड़ कर राज्य सभा सीट हथियाई। हमने ऊपर जिन तीन मुद्दों के बारे में बात की अगर उन्हें लेकर कांग्रेस की सोच का पता लग जाता तो ये बातें मायने नहीं रखतीं। वह रोजगार, अर्थव्यवस्था और कृषि क्षेत्र की निराशा के मुद्दे पर नरेंद्र मोदी पर हमले जारी रख सकती है। परंतु इससे ये समस्याएं हल कैसे होंगी यह हमें नहीं बताया जाता। इन दिनों राहुल जिन एक्टिविस्टों पर मोहित हैं, उनकी आइसा की शैली की वामपंथी राजनीति कुछ लोगों को लुभा सकती है। परंतु जब हमें दायित्व मिलेगा तब हम उत्तर देंगे वाली शैली सही नहीं है।

राष्ट्रवाद, सुरक्षा, आतंक के खिलाफ जंग, विदेश नीति आदि के मोर्चे पर कांग्रेस जड़ नजर आती है लेकिन तभी कोई सैम पित्रोदा आकर उसे झटका दे देते हैं। कांग्रेस का कोई नेता यह नहीं कहता कि मिराज और सुखोई समेत जिन विमानों और हथियारों से जंग लड़ी जा रही है, उन्हें कांग्रेस की सरकारों ने खरीदा था। दूसरी ओर राहुल से ऐसे झूठ बुलवाए जाते हैं जिन्हें आसानी से पकड़ा जा सकता है। उदाहरण के लिए यह कहना कि मिराज एचएएल ने बनाए। एचएएल ने न कभी मिराज बनाया, न बनाएगा। यह विमान दसॉ ने बनाया है और इसका ऑर्डर सन 1982 में उनकी दादी इंदिरा गांधी ने दिया था। तीसरा मुद्दा है सामाजिक समरसता का। यहां प्रेम और सहिष्णुता की बातें करना अच्छा है लेकिन सबरीमला, तीन तलाक और राम मंदिर के मुद्दे पर आप भाजपा से अलग कैसे हैं?

पिछले दिनों टी एन नाइनन ने अपने स्तंभ साप्ताहिक मंथन में संप्रग सरकार की उपलब्धियां गिनाई थीं। इनमें लोगों की गरीबी दूर करने से लेकर कृषि विकास, बुनियादी व्यय, आधार की सुविधा आदि का जिक्र था। मैं इसमें नाभिकीय समझौते को शामिल करना चाहूंगा। उन्होंने सवाल किया था कि कांग्रेस अपनी उपलब्धियों का जिक्र क्यों नहीं कर रही और मोदी को यह माहौल बनाने दे रही है कि देश में जो कुछ हुआ वह पिछले पांच साल में ही हुआ? कांग्रेस को ये मुद्दे उठाने चाहिए। अगर ऐसा नहीं होता तो आप ही तय कीजिए कि यह राजनीतिक दल है या स्वयंसेवी संगठन। स्वयंसेवी संगठन भी सत्ता विरोधी होते हैं, भले ही वे दशक भर सत्ता का हिस्सा रहे हों।

चुनावी वादों की बौछारों में महज कुछ छींटों से भी वंचित वादी

यह वह समय है, जब राजनीतिक पार्टियां घोषणा पत्र जारी करती हैं। उनमें से कुछ ने अपनी वेबसाइटों से पुराने घोषणा-पत्र हटा लिए हैं ताकि जिज्ञासु लोग यह पड़ताल न कर पाएं कि घोषणा-पत्र के कितने वादे असल में पूरे किए गए। पार्टियों ने अपनी प्रतिद्वंद्वियों के 2014 के घोषणा-पत्रों की नई दिल्ली में होली जलाई है ताकि उनके पूरे नहीं किए गए वादों को उजागर किया जा सके।

बहुत कम लोगों को ऐसा कोई घोषणा-पत्र याद होगा, जिसमें न्यायपालिका में दशकों से बनी हुई समस्या को पूरी गंभीरता से हल करने की कोशिश की गई। इसी वजह से कोई वादे टूटे भी नहीं। यहां कोई वोट बैंक नहीं है और वादियों का संकट किसानों या बेरोजगार युवाओं के बराबर नहीं है। बहुत से मुख्य न्यायाधीशों ने सरकार को चेताया था कि न्याय प्रणाली कमजोर पड़ रही है। इन मुख्य न्यायाधीशों में से एक ने ऐसा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के सामने एक सार्वजनिक कार्यक्रम में कहा था और उन्हें आंखें पोंछते हुए देखा गया था। न्यायाधीशों का अनुमान है कि तीन करोड़ लंबित मामलों को निपटाने में 100 से 200 वर्ष लगेंगे। शिक्षा के प्रसार, लोगों में अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ने और हर बार आने वाली सरकारों के इस क्षेत्र की अनदेखी करने से समस्या और विकराल बनेगी।

यह जगजाहिर है कि न्यायपालिका के लिए महज 0.2 फीसदी बजट आवंटित किया जाता है। किसी भी चुनावी घोषणा-पत्र में अदालतों में बुनियादी ढांचे के मुद्दे को जगह दी गई। उच्चतम न्यायालय की पिछले महीने की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि हाल के वर्षों में राज्यों के न्यायिक बुनियादी ढांचे के लिए केंद्र का अनुदान आधा हो गया है। मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई की अध्यक्षता वाले एक पीठ ने अदालत में कहा कि कुछ निचली अदालतों के दौरे में यह सामने आया कि उनकी हालत बीते कई वर्षों से खस्ताहाल बनी हुई है। न्यायाधीशों ने कहा, 'अदालती कक्ष पुराने और खराब हालत में हैं। न्यायिक अधिकारी ऐसे अदालती कक्षों में काम कर रहे हैं, जिन्हें पर्दों के जरिये अलग-अलग कक्षों में बांटा गया है। इस वजह से उनके जल्द फैसले लिखने के आसार होते हैं।' ऐसी खबरें आई हैं कि निचली अदालतों में 140 मामले 60 से अधिक वर्षों से लंबित हैं।

अदालती आईना
एम जे एंटनी

बहुत कम लोगों को ऐसा कोई घोषणा-पत्र याद होगा, जिसमें न्यायपालिका में दशकों से बनी हुई समस्या को पूरी गंभीरता से हल करने की कोशिश की गई। इसी वजह से कोई वादे टूटे भी नहीं। यहां कोई वोट बैंक नहीं है और वादियों का संकट किसानों या बेरोजगार युवाओं के बराबर नहीं है।

शीर्ष अदालत में भी स्थिति ज्यादा बेहतर नहीं है। उच्चतम न्यायालय के दस्तावेजों को खंगालने से संकट की गहराई का पता चलता है। ऐसे 260 से अधिक संवैधानिक मामले हैं, जिन्हें पांच न्यायाधीशों के पीठों को भेजा गया है। कुछ की सुनवाई 1992 में होनी थी। ये सवाल बहुत जटिल हैं जैसे 1975 में आपातकाल के दौरान संवैधानिक संशोधनों के बाद संपत्ति का अधिकार। इसके अलावा ऐसे 11 मामले हैं, जिन्हें सात सदस्यों के पीठ के पास भेजा गया है। ये भी पुराने मामले हैं और विधायिका के विशेषाधिकार बनाम मीडिया की स्वतंत्रता जैसे जटिल विषयों से संबंधित हैं। इसके अलावा 132 मामले ऐसे हैं, जिनकी सुनवाई नौ सदस्यों के पीठ द्वारा की जानी है। अगर इन जटिल मुद्दों की सुनवाई संविधान पीठ करेंगे तो उच्चतम न्यायालय में शेष करीब 60,000 मामलों की सुनवाई में और देरी होगी। बहुत सी पुरानी नागरिक याचिकाओं में वादी या प्रतिवादी के नाम के पीछे (डी) लगा हुआ है। इसका मतलब है कि उनकी मृत्यु हो चुकी है और उन्होंने मामले की फाइलें अपने कानूनी प्रतिनिधियों को दे दी हैं। यह स्थिति उच्च न्यायालयों में और अधिक विकट है।

इन हालात को देखकर ऐसा लगता है कि राजनेता यही चाहते हैं कि न्यायपालिका की स्थिति ऐसी ही बनी रहे। हाल में यह पाया गया कि राजनेताओं के बहुत से मामले तीन दशकों से चल रहे हैं। हालांकि उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया है कि उन्हें एक साल के भीतर निपटाया जाए। आम नागरिकों के कुछ मामलों को चार दशक बीत चुके हैं। इसके नतीजतन जेलों में भीड़ बढ़ गई है। कुछ जेलों में तो उनकी क्षमता से दोगुने कैदी हैं। हर तीन कैदियों में से दो अपने मुकदमे खत्म होने का इंतजार कर रहे हैं। कुछ कैदी तो जेल में उससे कहीं अधिक समय बिता चुके हैं, जो उनके अपराध के लिए निर्धारित अधिकतम दंड से अधिक है। उच्चतम न्यायालय की रिपोर्ट दर्शाती हैं कि 3.8 लाख कैदियों के लिए बने कमरों को 4.3 लाख कैदियों को साझा करना पड़ा।

यह तस्वीर उससे बिल्कुल उलट है, जिसमें कथित रूप से कर्नाटक के एक राजनेता को शानदार अपार्टमेंट मुहैया कराया जा रहा है या लंदन के मजिस्ट्रेट के शब्दों में मुंबई की एक सेल को 'फिर से सजाया' गया है, जिसमें एक भगोड़े कारोबारी को लाया जाएगा।

ये आंकड़े घोषणा-पत्रों के शिल्पकारों का ध्यान खींचने के लिए तरस रहे हैं। इनसे सरकार और न्यायाधीशों को चयनित करने वाले कॉलेजियम के बीच तकरार जुड़ी हुई है। हालांकि वादियों की नाराजगी को आर्थिक, धार्मिक या सांप्रदायिक क्षेत्रों के लिए किए जाने वाले वादों में जगह नहीं मिलती है। राजनेताओं को वहां मुनाफा ज्यादा मिलता है।

ऐसा नहीं है कि मतदाता चुनावी वादों को बिना सोचे-समझे स्वीकार कर लेते हैं। लेकिन उन वादियों को भरोसे के कुछ शब्द भी नहीं मिलते, जो अदालती इमारतों में उदासी भरे चेहरे लेकर घूम रहे हैं।

कानाफूसी

जातीय समीकरण

शिवपाल सिंह यादव की प्रगतिशील समाजवादी पार्टी (लोहिया) ने उत्तर प्रदेश में बसपा और सपा के प्रत्याशियों की नींद उड़ा दी है। ऐसा लग रहा है कि शिवपाल की पार्टी इन दोनों दलों के एकजुट होकर भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) का मुकाबला करने की योजना को नुकसान पहुंचाएगी। उत्तर प्रदेश में अकबरपुर लोकसभा सीट काफी अहमियत रखती है। सपा-बसपा गठबंधन ने इस सीट से निशा सचान को प्रत्याशी बनाया है। कांग्रेस ने यहां से राजाराम पाल को प्रत्याशी बनाकर उनको पहला धक्का दिया क्योंकि दोनों ही प्रत्याशी पिछड़ा वर्ग से ताल्लुक रखते हैं। अब शिवपाल सिंह यादव ने भी इस सीट से एक पिछड़े प्रत्याशी को टिकट देने की घोषणा कर दी है। ऐसे में अगर भाजपा इस सीट से किसी सवर्ण प्रत्याशी को खड़ा करती है तो इस बात की काफी संभावना है कि वह प्रत्याशी चुनाव जीत जाए क्योंकि पिछड़ा वर्ग के वोट तो तीन प्रत्याशियों के बीच बंट जाएंगे।

फिरोजाबाद की चुनौती

शिवपाल सिंह यादव ने घोषणा की है कि वह फिरोजाबाद सीट से लड़ेंगे। इस सीट से उनके भतीजे यानी रामगोपाल यादव के बेटे अक्षय यादव सपा के प्रत्याशी हैं। कांग्रेस ने कहा है कि वह इस सीट से प्रत्याशी नहीं खड़ा करेगी। अब सबको इस बात का इंतजार है कि भाजपा यहां से किसे टिकट देती है। सपा यहां से पांच बार चुनाव जीत चुकी है लेकिन यह सीट पार्टी के लिए आसान नहीं है। सन 2009 के उपचुनाव में डिंपल यादव यहां से कांग्रेस के राज बब्बर से हार चुकी हैं। ऐसे में अगर कांग्रेस यहां मजबूत प्रत्याशी खड़ा करती तो उचित होता। कई बार कांग्रेस के व्यवहार के बारे में पता ही नहीं चलता कि वह करना क्या चाहती है।

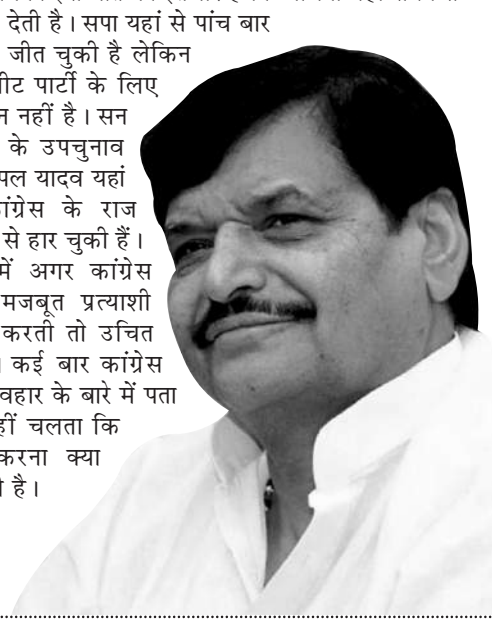

आपका पक्ष

देश को मिला पहला लोकपाल

देश में भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने तथा लोक सेवकों के खिलाफ भ्रष्टाचार के मामलों को देखने के लिए लोकपाल एवं लोकायुक्त कानून 2013 पारित हुआ था। इस कानून के तहत केंद्र में लोकपाल तथा राज्यों में लोकायुक्त नियुक्त किए जाएंगे। नियम के अनुसार लोकपाल समिति में एक अध्यक्ष और और अधिकतम आठ सदस्यों का प्रावधान है। इनमें से चार न्यायिक सदस्य होने चाहिए। इसके अलावा लोकपाल के सदस्यों में 50 प्रतिशत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक तथा महिलाएं होनी चाहिए। नियम के अनुसार चयन होने के बाद अध्यक्ष और सदस्य पांच साल के कार्यकाल या 70 साल की उम्र तक पद पर बने रह सकते हैं। लोकपाल अध्यक्ष का वेतन और भत्ते भारत के प्रधान न्यायाधीश के बराबर होंगे। वहीं सदस्यों को उच्चतम न्यायालय के बराबर वेतन और भत्ते मिलेंगे।

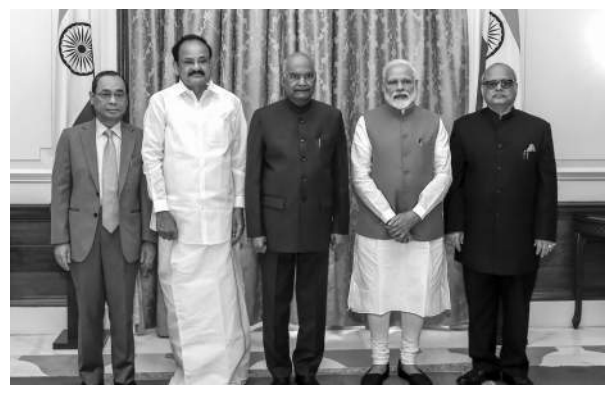

शनिवार को राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने लोकपाल न्यायमूर्ति पीसी घोष को शपथ दिलाई

राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने 23 मार्च को देश के पहले लोकपाल पिनाकी चंद्र घोष को शपथ दिलाई। न्यायामूर्ति पिनाकी चंद्र घोष उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश हैं। वहीं लोकपाल में न्यायिक सदस्यों में उच्च न्यायालयों के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति दिलीप बी भोसले, न्यायमूर्ति प्रदीप कुमार मोहंती, न्यायमूर्ति अभिलाषा कुमारी, छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश अजय कुमार त्रिपाठी हैं। गैर न्यायायिक सदस्यों में सशस्त्र सीमा बल की पूर्व महिला प्रमुख अर्चना रामसुंदरम, महाराष्ट्र के पूर्व मुख्य सचिव दिनेश कुमार जैन, पूर्व आईआरएस अधिकारी महेंद्र सिंह और गुजरात कैडर के पूर्व आईएएस अधिकारी इंद्रजीत प्रसाद गौतम हैं। देश में लोकपाल की नियुक्ति के लिए काफी आंदोलन हो चुके हैं। अन्ना हजारे लोकपाल के लिए राजधानी में कई दिनों तक अनशन भी किए थे। इस वक्त लोकपाल नियुक्ति के लिए देश में जनआंदोलन भी चला था। दिल्ली के वर्तमान मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल भी अन्ना हजारे के आंदोलन शामिल हुए थे। लोकपाल की नियुक्ति के अलावा राज्यों में लोकायुक्त की नियुक्ति की गई है। लोकपाल तथा लोकायुक्त की नियुक्ति के बाद भ्रष्टाचार में कमी लाने तथा लोकपाल एवं लोकायुक्त कानून 2013 का कड़ाई से पालन करने की जरूरत है।

मोहित कुमार, नई दिल्ली

पुल हादसे रोकने के लिए मरम्मत जरूरी

मुंबई में हाल में हुए पैदल पार पथ पुल दुर्घटना में छह लोगों की मौत हो गई तथा कई लोग घायल हो गए। पुल गिरने का कारण जांच के बाद ही पता चल सकेगा। लेकिन ब्रिटिश काल के समय बने पुलों, रेल डिब्बों पर एक तिथि लिखी जाती थी। इस तिथि के बाद उसका इस्तेमाल नहीं किया जाता था। जहां तक पुलों की बात है उसे उत तिथि से पूर्व मरम्मत करा दी जाती थी जिससे उसका इस्तेमाल किया जा सके और किसी प्रकार के हादसे को रोका जा सके। देश में अब मरम्मत करने की परंपरा की अनदेखी कर दी गई और ऐसे स्थानों पर अब उसकी अंतिम तिथि का लेखन भी बंद कर दिया गया है। अंतिम तिथि का लेखन दोबारा लाने की जरूरत है जिससे पता चल सके कि कोई पुल कितना चलेगा तथा अवधि खत्म होने से पहले उसकी मरम्मत हो सके।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।

हेमचंद गोदीका, जयपुर